सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व : आचारांग के परिप्रेक्ष्य में

—साध्वी सुरेखा श्री जी
(प० पू० प्र० विचक्षण श्री जी म० सा० शिष्या—विदुषी लेखिका)

भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि के आस्तिक दर्शनों में जैनदर्शन जीवात्मा को ही परमात्म स्वरूप होना स्वीकार करता है। आत्मा का अभ्युदय आत्माभिमुखता की ओर अग्रसर हुए बिना नहीं हो सकता। पराभिनिवेश से मुक्त है जिसकी आत्मा, वही परमात्म-पद की ओर कदम बढ़ा सकता है। जब तक निश्चित रूप से जीवात्मा स्व-पर भेदविज्ञानी नहीं बन जाता, तब तक मोक्षाभिमुख नहीं हो पाता। यह स्व-पर भेदविज्ञान अर्थात् जीव और जगत्, जड़ और चेतन का पृथक-पृथक ज्ञान और तदनुसार आचरण हो तब हो पाता है। यही बीजारोपण "सम्यक्त्व" शब्द से अभिप्रेत है। संसार भ्रमण की परिधि को सम्यक्त्व सीमित कर देता है।

हालांकि लौकिक व्यवहार में सम्यक्त्व/समकित यह शब्द जैनधर्म के प्रायः सभी धर्म-स्थानों में श्रवण गोचर होता है। कभी-कभी तो यह भी सुनाई देता है कि मुझे अमुक गुरु की समकित है। मैंने उन गुरु से समकित ली है। तो क्या सम्यक्त्व अथवा समकित लेने-देने की वस्तु है जो कि गुरु अपने अनुयायियों को प्रदान करते हैं। इस प्रथा के रूप में ही सम्यक्त्व है या अनेकान्तवादी जैनदर्शन व जैनागम अन्य अर्थ को द्योतित करता है। व्यवहार और निश्चय इन दो पहलुओं को दृष्टिकोण में रखकर जैनदर्शन हर वस्तु की मीमांसा करता है। उपर्युक्त प्रथा व्यावहारिक हो सकती है, पर निश्चय में सम्यक्त्व का मूल्यांकन अनूठे ढंग से किया गया है।

"सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व" किस प्रकार हो सकता है? उससे पूर्व यह जान लें कि सम्यक्त्व है क्या? सम्यक्त्व का अर्थ हो गया है, श्रद्धान! पदार्थों पर श्रद्धान! वस्तु तत्व पर श्रद्धान! अन्य दर्शनों ने जिसे श्रद्धा कहा उसी को जैनों ने पारिभाषिक शब्द दिया है सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शन। वाचकवर्य उमास्वाति ने इसे परिभाषित किया तत्वार्थ सूत्र में "तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"। यहाँ तत्वों पर श्रद्धा ही सम्यक्त्व है, यह निर्देश किया गया है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ करें तो सम् पूर्वक अंच् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर सम्यक् शब्द निष्पन्न होता है। "समंचित इति सम्यक्" इस प्रकार भी व्युत्पत्ति होती है। प्रकृत में इसका अर्थ प्रशंसा है। उमास्वाति ने अपने भाष्य में सम्यग् शब्द का अर्थ करते हुए कहा—"सम्यगिति प्रशंसार्थो निपातः, समंचतेर्वा भावः" अर्थात् निपात से सम्यक् यह प्रशंसार्थक शब्द है तथा सम्पूर्वक अंच् धातु यह भाव से है। राजवार्तिककार अकलंक देव के अनुसार प्रशंसार्थक (निपात) के साथ यह प्रशस्त रूप, गति, जाति, कुल, आयु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञान आदि अभ्युदय और निःश्रेयस का प्रधान कारण होता है। अथवा सम्यक् का अर्थ तत्व भी किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा तत्व दर्शन, अथवा यह क्विप् प्रत्ययान्त शब्द है, जिसका अर्थ है—जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानने वाला।

सम्यक् शब्द की व्युत्पत्ति करने के पश्चात् अब 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति पूज्यपाद करते हैं— 'पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्रं वा दर्शनम्' अर्थात् जो देखता है, जिसके द्वारा देखा जाय या देखना मात्र।

सिद्धसेन के अनुसार 'दर्शनमिति दृशेख्यभिचारिणी सर्वेन्दियानिन्द्रियार्थ प्राप्तिः' अव्यभिचारी इन्द्रिय और अनिन्द्रिय अर्थात् मन के सन्निकर्ष से अर्थ प्राप्ति होना दर्शन है। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृशि' धातु के ल्युट् प्रत्यय करके भाव में इक् प्रत्यय होने पर जिसके द्वारा देखा जाता है, जिससे देखा जाता है तथा जिसमें देखा जाता है वह दर्शन है। इस प्रकार जीवादि के विषय में अविपरीत अर्थात् अर्थ को ग्रहण करने में प्रवृत्त ऐसी दृष्टि सम्यग्दर्शन है। अथवा "प्रशस्तं दर्शनं सम्यग्दर्शनमिति" अर्थात् जिनेश्वर द्वारा अभिहित अविपरीत अर्थात् यथार्थ द्रव्यों और भावों में रुचि होना यह प्रशस्त दर्शन है। प्रशस्त इसलिए है कि मोक्ष का हेतु है। व्युत्पत्ति पक्ष के आश्रित अर्थ को लेकर कहते हैं—संगतं वा दर्शनं सम्यग्दर्शनम्' अर्थात् जिनप्रवचन के अनुसार संगत विचार करना वह सम्यग्दर्शन है। इस प्रकार जिनोक्त तत्वों पर ज्ञानपरक होने वाली श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा।

तत्त्वार्थ सूत्र में तथा टीकाकारों ने श्रद्धापरक अर्थ को लेकर ही सम्यक्त्व की व्युत्पत्ति की। किन्तु आगमों में इसका अर्थ भिन्न है। आगमों में सर्व प्राचीन व प्रथम अंग है आचारांग। आचारांग सूत्र आचारप्रधान है। आचारांग में सम्यक्त्व नामक अध्ययन होने पर भी सम्यक्त्व का अर्थ श्रद्धापरक नहीं वरन् सम्यक्आचारपरक है। सम्यक्त्व को स्पष्ट रूप से मुनि आचार कहा गया है। हाँ, सम्यक्आचार श्रद्धापूर्वक होता है। श्रद्धा आचरण में सम्यक्तता, समीचीनता लाती है, स्थिरता लाती है, शुद्धता लाती है। सम्यक्त्व नामक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य अध्ययनों में भी सम्यक्त्व का उल्लेख तो है पर वहाँ भी सम्यक्त्व को सयम के, मुनित्व के समान माना है। संयमी चारित्रवान् मुनि के आचार को ही सम्यक्त्व से अभिप्रेत किया है। सम्यक्त्व और मुनित्व का एकीकरण करते हुए कहा है कि—

"जो सम्यक्त्व है उसे मुनिधर्म के रूप में देखो और जो मुनिधर्म है उसे सम्यक्त्व के रूप में देखो।"

हालाँकि चूर्णिकार और वृत्तिकार के अनुसार मौन अर्थात् मुनिधर्म—संयमानुष्ठान है। जहाँ मुनिधर्म है वहाँ सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान जहाँ है वहाँ सम्यक्त्व है। ज्ञान का फल विरति होने से सम्यक्त्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस तरह सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र में एकता है।

स्पष्ट है सम्यक्त्व को मुनित्व से अभिप्रेत किया गया है। मुनित्व अर्थात् आचरण की समीचीनता। सम्यक्त्व नामक अध्ययन में चार उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में सम्यग्वाद का अधिकार है। अविपरीत अर्थात् यथार्थ वस्तुतत्व का प्रतिपादन हो, वह सम्यग्वाद है। इस उद्देशक में हिंसा का स्वरूप बताकर उसका निषेधात्मक रूप अहिंसा का विधान किया है कि जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, हुए थे तथा होंगे उन सभी का यह कहना है कि किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है और जिन प्रवचन में प्ररूपित है। इस प्रकार अहिंसा तत्व का सम्यक् एवं सूक्ष्म निरूपण के साथ अहिंसा की त्रैकालिक एवं सार्वभौमिक मान्यता, सार्वजनीनता एवं सत्य-तथ्यता का सम्यग्वाद के रूप में प्रतिपादन किया है। अहिंसा व्रत को स्वीकार करने वाले साधक को कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे सावधान रहकर अहिंसा व्रत को स्वीकार करने का अहिंसा के आचरण के लिए पराक्रम करना चाहिए। इस प्रकार आचारांग के ४—१ में सम्यग्वाद के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा धर्म की चर्चा की गई है। चतुर्थ अध्ययन के दूसरे उद्देशक में धर्मप्रवादियों की धर्म परीक्षा का निरूपण है। विभिन्न धर्मप्रवादियों के प्रवादों में युक्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयुक्त की विचारणा होने से धर्म की परीक्षा का निरूपण है। इस उद्देशक में हिंसा और अहिंसा में युक्त क्या है और अयुक्त क्या है? इसकी परीक्षा की जाय। विभिन्न मतावलम्बियों में जो यह कहते हैं कि "यज्ञ-यागादि में होने वाली हिंसा दोषयुक्त नहीं" उनको बुलाकर पूछा जाय कि दुःख सुख रूप है या दुःख रूप है? तो सत्य तथ्य यही वे कहेंगे कि दुःख तो दुःख रूप ही है। क्योंकि दुःखार्थी कोई प्राणी नहीं, सभी प्राणी सुखार्थी है। अतः हिंसा अनिष्ट एवं दुःख रूप होने से त्याज्य है और अहिंसा इष्ट एवं सुखरूप होने से ग्रहण करने योग्य—उपादेय है। इसी के साथ आस्रव और परिस्रव की परीक्षा के लिए आस्रव में पड़े हुए ज्ञानीजन कैसे परिस्रव (निर्जरा धर्म) में प्रवृत्त हो जाते हैं। तथा परिस्रव (धर्म) का अवसर प्राप्त होने पर भी अज्ञानी जन कैसे आस्रव में फँसे रहते हैं? इस प्रकार आस्रव-मग्न जनों को विभिन्न दुःखों का स्पर्श होता है। फलस्वरूप प्रगाढ़ वेदना होती है। इसमें ज्ञानी और अज्ञानियों की गतिविधियों एवं अनुभव के आधार पर धर्मपरीक्षा की है।

तीसरे उद्देशक में निर्दोष/अनवद्य तप से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है न कि बाल-अज्ञान तप से, विश्लेषण किया है। तपस्वी कौन है? उनके गुण एवं प्रकृति तथा वे किस प्रकार तपश्चर्या कर कर्मक्षय करते हैं उसका विधान किया गया है। जो अहिंसक हैं, वे ज्ञानी हैं। उनकी वृत्तियों का निरीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि वे धर्म के विशेषज्ञ होने के साथ सरल व अनासक्त हैं। वे कषायों को भस्मीभूत कर कर्मों का क्षय करते हैं। ऐसा सम्यग्दृष्टि कहते हैं, क्योंकि "दुःख कर्मजनित हैं" वे इसे भलीभाँति जानते हैं। अतः कर्म-स्वरूप जानकर उसका त्याग करने का उपदेश देते हैं। जो अरिहन्त की आज्ञा के आकांक्षी, निस्पृही, बुद्धिमान पुरुष हैं, वे सर्वात्मदर्शन करके देहासक्ति छोड़ देते हैं। जिस प्रकार जीर्णकाष्ठ को अग्नि शीघ्र जला देती है, उसी प्रकार समाहित आत्म वाले वीर पुरुष कषाय रूपी कर्म शरीर को तपश्चर्या द्वारा शीघ्र जला देते हैं।

चतुर्थ उद्देशक में संक्षेप में चारित्र का निरूपण किया है। संयत जीवन कैसा? जो पूर्व सम्बन्धों का त्याग कर विषयासक्ति छोड़ देता है। इस प्रकार पुनर्जन्म को अवरुद्ध कर दिया है जिन्होंने ऐसे वीर पुरुषों का यह संयम मार्ग दुरूह है। स्थिर मन वाला ब्रह्मचर्य से युक्त ऐसा वीर पुरुष संयम में रत, सावधान, अप्रमत्त तथा तप द्वारा शरीर को कृश करके कर्मक्षय करने में प्रयत्नशील होता है। जो विषय-भोगों में लिप्त हैं, उन्हें जानना चाहिए कि मृत्यु अवश्यंभावी है। जो इच्छाओं के वशीभूत हैं, असंयमी हैं और परिग्रह में गृद्ध हैं, वे ही पुनः जन्म लेते हैं। जो पापकर्मों से निवृत्त हैं, वे ही वस्तुतः वासनारहित हैं। भोगैषणारहित पुरुष की निन्द्य प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? जो समितियों से समित, ज्ञान सहित, संयत, शुभाशुभदर्शी हैं, ऐसे ज्ञानियों की क्या उपाधि हो सकती है? सम्यग्द्रष्टा की कोई उपाधि नहीं होती, ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

इन चारों उद्देशकों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्तप और सम्यक्चारित्र का क्रमशः उल्लेख किया है। श्रद्धा अर्थ का कहीं उल्लेख नहीं है। इन चारों ही उद्देशकों पर दृष्टिपात करें तो सम्यक्त्व यहाँ सम्यक्आचरण से ही अभिप्रेत है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, काम-वासना रहित अनासक्ति आदि से युक्त है, तदनुसार ही उसका आचरण है, उसे सम्यक्त्व हो सकता है। ज्ञान मात्र अपेक्षित नहीं, वरन् यहाँ आचरण ही प्रधान बताया है। जो सम्यकत्वी/सम्यग्दृष्टि है उसके कार्य कैसे होते हैं, उसका उल्लेख करते हुए कहा है कि तत्ववेत्ता मुनि कल्याणकारी मोक्षमार्ग को जानकर पाप कर्म नहीं करता।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि आचरण की विशुद्धता सम्यक्त्व पर आधारित है। सम्यक्आचरण से युक्त जीवन ही चरम लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा सकता है। क्योंकि कहा भी है कि जो वीर सम्यक्त्वदर्शी/सम्यग्दृष्टि मुनि है वही संसार को तिरता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार आचारांग में सम्यक्त्व का अर्थ सम्यक्आचरण पर आधारित बताया है। किन्तु अन्य आगमों व आगमेतर साहित्य में सम्यक्त्व के प्रचलित अर्थ व स्वरूप में भिन्नता है। अपेक्षाभेद से, निश्चय-व्यवहारनय से उसमें समानता भी द्योतित होती है। आचारांग में आत्मोपम्य की भावना से ओतप्रोत, अहिंसा, विवेक, अनवद्य तप से युक्त चारित्र को सम्यक्त्व के अर्थ में व्यापक दृष्टि-कोण से अनुलक्षित किया है। क्योंकि उपरोक्त गुणों की सुरक्षा भी पूर्णतया मुनिजीवन में ही सम्भव है। जबकि सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में संयती मुनि के साथ व्रतधारी श्रावकों का भी सम्यग्दृष्टि होना बताया गया है। संयती मुनि व श्रावक श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करते हैं, यत्र-तत्र उसका भी उल्लेख मिलता है। किन्तु सम्यक्त्व के स्वरूप ने श्रद्धा रूपी बाना यहाँ धारण नहीं किया। उत्तराध्ययन सूत्र में सर्वप्रथम सम्यक्त्व को तत्व श्रद्धा स्वीकार किया व तत्वों का भी निर्देशन किया गया है। अन्य आगमों में इसके भेद, प्रकार, अति-चार, अंग, लक्षण आदि का कथन किया गया।

आगमेतर साहित्य में तत्त्वार्थ सूत्र में वाचकवर्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप स्पष्ट रूप से निर्धारित किया। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा तत्त्वार्थ सूत्र अधिक प्रकाश में आया। उसका कारण यह रहा कि यह सभी जैन सम्प्रदायों को ग्राह्य है। तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकारों ने भी इसकी विशद चर्चा की। सम्यक्त्व के पर्यायवाची शब्द सम्यग्दर्शन, श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, विश्वास भी व्यवहृत होते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति में किसी ने ज्ञान को पश्चात्‌वर्ती माना तो किसी ने सहभागी माना। तत्त्वार्थ के पूर्व नंदीसूत्र में देववाचक गणि ने कहा कि सम्यग्दृष्टि का श्रुत ही सम्यक्श्रुत है अन्यथा वह मिथ्याश्रुत है। दिगम्बर साहित्य में भी सम्यक्त्व का यही स्वरूप स्वीकृत किया है।

जैनेतर दर्शनों में बौद्धदर्शन तो श्रमण भगवान महावीर के समकालीन व सन्निकट रहा है। अतः इनमें एक दूसरे का प्रतिबिम्ब झलकना स्वाभाविक है। त्रिपिटकों में सम्यग्दृष्टि को सम्मादिट्ठी कहा गया तथा सम्यग्दृष्टि श्रद्धायुक्त होता है। आर्य अष्टांगिक मार्ग, शिक्षात्रय, आध्यात्मिक विकास की पाँच शक्तियाँ और पाँच बल सभी में श्रद्धा का स्थान प्रथम माना है। इसी मोक्षमार्ग के साधन रूप श्रद्धा को सांख्यदर्शन एवं योगदर्शन ने विवेकख्याति कह कर सम्बोधित किया है। वेदान्तदर्शन में ज्ञान में ही श्रद्धा को अन्तर्निहित किया गया है।

महाभारत में श्रद्धा को सर्वोपरि माना है तथा श्रद्धा ही सब पापों से मुक्त कराने वाली है ऐसा मान्य किया है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रद्धा धारण करने का उपदेश दिया और कहा कि श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वही संयती होता है। तदनन्तर वह आत्मा परब्रह्म को प्राप्त हो सकती है। ईसाई धर्म व इस्लाम धर्म में भी श्रद्धा को प्राथमिकता दी है। तात्पर्य यह है कि सर्व धर्म दर्शनों ने श्रद्धा/सम्यग्दर्शन को मोक्ष का हेतु समवेत स्वर से स्वीकार किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण है ही, किन्तु लौकिक जीवन में भी इसका महत्व कम नहीं। जैन मान्यतानुसार इसका हम यथार्थ दृष्टिपरक अर्थ करते हैं तो भी इसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। क्योंकि यह जीवन के प्रति ही एक दृष्टिकोण हो जाता है। अहिंसा अनेकान्त और अनासक्त जीवन जीने की कला इससे प्राप्त होती है। चूँकि जीवनदृष्टि के अनुसार ही व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण होता है, दृष्टि के अनुसार ही जीवन सृष्टि निर्मित होती है। ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा है। अतः यह अपने आप पर निर्भर है कि हमको जैसा बनना है उसी के अनुरूप हम अपनी जीवनदृष्टि बनाएँ। क्योंकि जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही उसके जीवन जीने का ढंग होता है और जैसा उसके जीने का ढंग होता है, उसी स्तर से उसके चरित्र का निर्माण होता है और चरित्र के अनुसार ही उसके व्यक्तित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में प्रतिभा आती है। इस प्रकार यथार्थ दृष्टिकोण होना जीवन-निर्माण की दिशा में आवश्यकीय है।

सैद्धान्तिक अपेक्षा से आध्यात्मिक विकास में सम्यक्त्व महत्वपूर्ण है ही किन्तु व्यावहारिक जीवन में भी सम्यक्त्व अत्यन्त उपयोगी है। सामाजिक क्षेत्र हो या पारिवारिक क्षेत्र हो, राजनैतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो या नैतिक क्षेत्र हो हर क्षेत्र में सम्यकत्व उपयोगी व महत्वपूर्ण है; क्योंकि सही दृष्टि सही दिशा की ओर ले जाती है। फलतः मंजिल तक पहुँचा देती है। गलत राह पर जाने वाला भटक जाता है, सही राह वाला नहीं।

जीवन के आदर्शों के साथ परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना, सम्यक् रीति से जीवन व्यतीत करना है। राजनैतिक व्यवस्था सम्यक् न होगी तो राष्ट्र में भ्रष्टाचार बढ़ता ही जावेगा, फलस्वरूप राष्ट्र का अनैतिकता के कारण पतन हो जायेगा। धार्मिक व नैतिक क्षेत्र में तो स्पष्ट रूप से ही सम्यक्त्व की छाप दृष्टिगोचर होती है। धार्मिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन में उपयोग होना ही सम्यक्त्व है। जीवन को सुव्यवस्थित रूप से, सुचारु रूप से प्रतिपादन करने में, उत्तरोत्तर आत्मिक गुणों के विकास में सम्यक्त्व ही सहायक है।

□ □

卐 भाषा की मधुरता और शिष्टता में ही व्यक्ति की कुलीनता और सज्जनता छिपी हुई है। भाषा से ही व्यक्ति अपना परिचय दे देता है कि वह किस खानदान से ताल्लुक रखता है। भाषा की शालीनता जहाँ व्यक्ति को सम्मान दिलाती है वहीं व्यक्ति के प्रथम परिचय में ही अमिट छाप अंकित कर देती है।

卐 इसी जीभ में अमृत और जहर बसता है। मधुरता भाषा का अमृत है और कटुता जहर है। यह जहर व्यक्ति के स्वयं के जीवन में भी अशान्ति फैलाता है और अन्य को भी परेशान करता है। आपको अनुभव भी होगा। अगर किसी बात को स्नेह से कहते हैं तो आपका सारा तनाव काफूर हो जाता है। अगर गुस्से में कहते हैं—दो-चार गालियाँ सुनाकर कहते हैं तो तनाव से ग्रस्त रहते हैं?

—आचार्य श्री जिनकान्ति सागरसूरि

('उठ जाग मुसाफिर भोर भई' पुस्तक से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org